टिप्पणी

# 5

# प्रस्थानत्रयी में श्रुतिप्रस्थान

## प्रस्तावना

जिसके द्वारा ले जाया जाता है, वह प्रस्थान है। प्रत्येक दर्शन किसी पर अथवा किसी की प्रतिष्ठा होती है। वेदान्त दर्शन में जिनकी भी प्रतिष्ठा होती है वे प्रत्येक प्रस्थान शब्द द्वारा जाने जाते हैं। और वे हैं श्रुति, स्मृति, और न्याय। तथा सभी की 'प्रस्थानत्रय' यह संज्ञा है। ये ही वेदान्त दर्शन की भित्तिभूत हैं।

श्रुति निश्चिय ही वेदान्त अथवा उत्तर मीमांसा का आरम्भ है। किन्तु उपनिषद् में उक्त विषयों का बोध सरलता से नहीं होता है। उससे उत्पन्न अर्थों को ज्ञान में भ्रान्ति होगी, इसका निश्चय करके उनके सार के उन्मोचन के लिए, और शास्त्र के रक्षण के लिए अन्य ग्रन्थ रचे गए। उनमें महाभारत में भीष्मपर्व में उद्धृत श्रीमद्भगवद्गीता तथा महर्षि बादरायण प्रणीत वेदान्तसूत्र प्रमुख रूप से प्रमाणभूत हैं। एवं श्रुति प्रस्थान के द्वारा ईश आदि उपनिषद्, स्मृति प्रस्थान से श्रीमद्भगवद्गीता और न्याय प्रस्थान के द्वारा वेदान्तसूत्र अथवा शारीरक सूत्र विद्वानों द्वारा स्वीकृत हैं।

ये सभी वेदान्तशास्त्र में प्रमाण हैं। किन्तु उसमें परम प्रमाण भूति श्रुति, और तत्पश्चात् प्रमाणभूत न्याय है। यदि इनका परस्पर कोई विरोध होता है तब श्रुति ही प्रमाण है।

यहाँ यह जानने योग्य है कि केवल गीता ही स्मृति नहीं है। किन्तु वेदान्त प्रतिपादित तत्व पुराण आदि में जहाँ जहाँ उपलब्ध होते है, वे सभी ही स्मृति रूप प्रमाण हैं। इसी प्रकार उपनिषद् को ही केवल श्रुति रूप में ग्रहण नहीं किया गया। समग्र वेद में जहाँ जहाँ वेदान्त प्रतिपादक वाक्य हैं वे सभी श्रुतिप्रमाण के रूप में स्वीकृत है, ऐसी वेदान्त परम्परा है। किन्तु न्याय प्रस्थान के रूप में शारीरिक सूत्र ही स्वीकार किया जाता है।

टिप्पणी

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- प्रस्थान के विषय में जान पाने में;
- श्रुति क्या है, यह जान पाने में;
- उपनिषद् शब्द का अर्थ जान पाने में;
- उपनिषद्-प्राप्ति कहाँ होती है, यह जान पाने में;
- उपनिषद् और वेदान्त शब्द का क्या सम्बन्ध है, जान पाने में;
- उपनिषद् का संक्षिप्त रूप में परिचय कर पाने में।

**श्रुतिप्रस्थान**

## 5.1 श्रुति

श्रुति ही वेद है। वेद के पर्याय शब्दों में श्रुति ही अन्यतम है। 'श्रूयते अनया' यह व्युत्पत्ति है। तेन श्रवणार्थक श्रु धातु के क्तिन् प्रत्यय में 'श्रुति', यह पद उपलब्ध होता है। वेद दो प्रकार से विभाजित है- कर्मकाण्डात्मक और ज्ञानकाण्डात्मक। ज्ञानकाण्ड ही उत्तर मीमांसा का विषय है। भाट्ट आदि के मत में पूर्व मीमांसा का विषय तो कर्म है। ईश आदि उपनिषद् का ज्ञानकाण्ड में अन्तर्भाव होता है।

## 5.2 उपनिषद्

उपनिषद् का नाम ब्रह्मविद्या है। उप और नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु का क्विप् प्रत्यय में उपनिषद् यह स्त्रीलिंन्न रूप प्राप्त होता है। षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु यह पाणिनीय धातु पाठ की उक्ति है। उसके द्वारा सद् के तीन अर्थ प्राप्त होते हैं। उससे इस प्रकार 'उपनिषद्' इस शब्द के धातु के तीन अर्थ होते हैं-

1) **विशरण** - विशरण का अर्थ विनाश अथवा हिंसा है। उसके अनुसार मुमुक्षु जिस विद्या को उप अर्थात् समीप जाकर उसमें निष्ठा से परायण होकर, नि अर्थात् निश्चयपूर्वक उसका परिशीलन करता है, उसके द्वारा जो विद्या उसके अविद्या आदि संसार रूपी बीज को नष्ट करती है, यह अर्थ है।

2) **गति** - मुमुक्षु जिस विद्या को 'उप' अर्थात् उसके समीप जाकर उसमें निष्ठा से परायण होकर 'नि' अर्थात् निश्चयपूर्वक उसका परिशीलन करता है, उसके द्वारा जो विद्या उस परं ब्रह्म तक जाती है, 'ब्रह्म विद्या तक जाती है', ऐसा अर्थ है।

3) **अवसादन**- समीप गया हुआ मुमुक्षु निश्चय पूर्वक जो विद्या गर्भवास, जन्म, जरा, मरण आदि उपद्रव रूप संसार चक्र को शिथिल करता है, यह अर्थ है।

यहाँ जो अर्थ स्वीकार किये गए हैं वे निश्चय ही श्रीभगवत्पाद शंकराचार्य के द्वारा कठोपनिषद् की भाष्य भूमिका में आलोचित हैं। इसीलिए भाष्य- 'ये मुमुक्षवो दृष्टानुश्रविकविष्यवितृष्णाः सन्तः उपनिषच्छब्दवाच्यां वक्ष्यमाणलक्षणां विद्यामुपसद्य उपगम्य त्तन्निष्ठतया निश्चयेन शीलयन्ति तेषामविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणात् हिंसनात् विनाशमादित्यनेनार्थयोगेन विद्योपनिषदित्युच्यते'।

## 5.3 उपनिषद् का वेदान्तत्व

उपनिषद् वेदान्त शब्द द्वारा भी अभिहित है। किसी भी प्रकार के प्रश्न में वेदान्त शब्द का ज्ञान आदि में आवश्यक होता है। उसमें वेदान्त नाम यद्यपि न्यायसूत्र, गीता आदि सभी परम्परा में ग्रहण होता है तथापि उपनिषद् विशेषतः वेदान्त शब्द से अभिहित होता है। इसीलिए वेद का अन्त अर्थात् वेदान्त। उसके द्वारा मन में ऐसा ज्ञान उदित होता हैं तो वेद के अन्तिम में उपनिषद को प्राप्त करते हैं। नहीं, यद्यपि प्रायः वेदों के अन्त में ही उपनिषद् प्राप्त होते हैं, तथापि उसका यह अर्थ नहीं होता है। यहाँ अन्त शब्द का अर्थ रहस्य, ऐसा ज्ञेय है। वेद का अन्त रहस्य है, उससे यह अर्थ प्राप्त होता है। वेद के रहस्य का सार यहाँ गृहीत है, ऐसा आशय है। उपनिषद् निश्चय ही वेद के सारभूत हैं। उपनिषद् में ही उपनिषद् शब्द द्वारा रहस्य को जानें, यह विहित है। इसीलिए केनोपनिषद् में चतुर्थ खण्ड में उपनिषद् शब्द रहस्य विद्या के अर्थ में प्रयुक्त है-

**उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति॥ (केन. 4/7)**

अब यह आया की कभी वेद के अन्तिम भाग में, कभी मध्य भाग में वेद के सारभूत उपनिषद् प्राप्त होते हैं। वस्तुतः प्रायः आरण्यक अथवा ब्राह्मण पर उपनिषद् प्राप्त होता है। कभी संहिता पर भी। उसमें मुक्तिकोपनिषद् में 108 संख्याओं के उपनिषदों का परिचय प्राप्त है। उसके अनुसार प्रत्येक वेद और उपनिषद् की संख्या-

- ऋग्वेद पर दस (10) उपनिषद्
- शुक्लयजुर्वेद पर उन्नीस (19) उपनिषद्
- कृष्ण यजुर्वेद पर बत्तीस (32) उपनिषद्
- सामवेद पर सोलह (16) उपनिषद्
- अथर्ववेद पर इक्कत्तीस (31) उपनिषद्

इन्हें छोड़कर भी उपनिषद् बहुत हैं। किन्तु उनका सम्प्रदाय में वैसा स्थान नहीं है। उन निश्चित उपनिषदों का विशेष देवता आश्रय होने के कारण उत्तर मीमांसा में अन्तर्भाव नहीं होता। किसी के अर्वाचीन होने के कारण सम्प्रदाय में स्थान नहीं है।

यहाँ केवल दस के मुख्यत्व को सम्प्रदाय में स्वीकार किया जाता है। कुछ ग्यारह को भी करते हैं। वे हैं-

1. ईशोपनिषत्
2. कोनोपनिषत्
3. कठोपनिषत्
4. प्रश्नोपनिषत्
5. मुण्डकोपनिषत्
6. माण्डूक्योपनिषद्
7. तैत्तिरीयोपनिषत्
8. ऐतेरेयोपनिषत्
9. छान्दोग्योपनिषत्
10. बृहदारण्यकोपनिषत्

और वहाँ संग्रह श्लोक है-

**ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः।**
**ऐतरेय च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥**

कुछ श्वेताश्वतरोपनिषद् और कौषीतक्युपनिषद्, इनका भी यद्यपि प्रमाण कोटि में अन्तर्भाव करते हैं तथापि उनके मुख्यत्व को स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार के विभाग में शंकर भगवत्पाद ही मान्य हैं। उपर्युक्त उपनिषदों पर आचार्य द्वारा भाष्य किये गए है। उनके विषयागाम्भीर्य आदि कारण से ही उसका वेदान्त सम्प्रदाय में ग्रहण होता है। उस से वे सम्प्रदाय में दस ही मुख्य रूप से स्वीकार किये जाते हैं।

कुछ श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य को भी भगवत्पाद की कृति कहते हैं। कौषीतक्युपनिषद् तो आचार्य द्वारा वहाँ वहाँ श्रुतिप्रमाण के रूप से स्वीकार किया गया है। मैत्रायणी आदि का भी उसमें कुछ के मत में अन्तर्भाव है।

यहाँ नीचे प्रकोष्ठ में मुख्य दस उपनिषद् किस वेद पर प्राप्त हैं, ऐसा कहते हैं-

| **उपनिषद्** | **वेद** |
|---|---|
| ईशोपनिषद् | शुक्ल यजुर्वेद |
| केनोपनिषद् | सामवेद |
| कठोपनिषद् | कृष्ण यजुर्वेद |
| प्रश्नोपनिषद् | अथर्ववेद |
| मुण्डकोपनिषद् | अथर्ववेद |
| माण्डूक्योपनिषद् | अथर्ववेद |
| तैत्तिरीयोपनिषद् | कृष्ण यजुर्वेद |
| ऐतरेयोपनिषद् | ऋग्वेद |
| छान्दोग्योपनिषद् | सामवेद |
| बृहदारण्यकोपनिषद् | शुक्ल यजुर्वेद |

कुछ गद्य, पद्य के भेद से उपनिषद् के नामभेद हैं आरण्यकोपनिषद् और मन्त्रोपनिषद्।

## पाठगत प्रश्न 5.1

1. प्रस्थान नाम क्या है?
2. प्रस्थान क्या हैं? नाम बताइए।
3. श्रीमद्भगवद्गीता प्राप्त होता है-

   (क) शान्तिपर्व में (ख) भीष्म पर्व में (ग) अनुशासन पर्व में
4. वेदांत सूत्र के प्रणेता कौन हैं?
5. प्रस्थानत्रयी में स्मृति न्याय से प्रबल है। यह सत्य है अथवा नहीं?
6. उपनिषद् शब्द का प्रकृति-प्रत्यय निरूपणपूर्वक अर्थ बताइए।
7. वेदांत शब्द का अर्थ संक्षिप्त रूप में लिखिए।
8. उपनिषद् कितने हैं? उसमें मुख्य कितने हैं?
9. मुख्योपनिषद् का मुख्यत्व कौन मानता है?
10. मुख्योपनिषद् के सङ्ग्रहश्लोक को लिखिए।
11. पद्यात्मकोपनिषद् संज्ञा क्या है?
12. कठोपनिषद्-

    (क) ऋग्वेदीय (ख) सामवेदीय (ग) यजुर्वेदीय

### उपनिषद् - परिचय

वेदान्त का विषय निश्चय ही जीव-ब्रह्म का ऐक्य है जो शुद्धचैतन्य है। उपनिषद् वेदान्त होने के कारण समान ही विषय है। उपनिषद् उसी का प्रतिपादन करते हैं।

सभी उपनिषदों का परिचय इस प्रकार से किया गया-

- किस वेद में उपनिषद् का अन्त र्भाव हो।
- नाम-वैशिष्टय
- गद्यात्मक और पद्यात्मक तथा अध्याय आदि विवेचन।
- संक्षेप से मुख्य विषय का ज्ञान

टिप्पणी

## 5.4 ईशोपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यान्दिन शाखा की संहिता में निश्चिय ही चालीस (40) अध्याय हैं। उसमें अन्तिम अध्याय ही ईशोपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य द्वारा कठ शाखा के अनुसार पाठ का भाष्य विरचित है। शाखा के भेद से यहाँ-वहाँ पाठभेद दिखतें हैं।

### 5.4.1 नामकरण

यह उपनिषद् 'ईशा वास्यमिदं सर्वम्' इस आदिमन्त्र द्वारा आरम्भ होता है, उसके कारण इसका ईशावास्योपनिषद्, यह अभिधेय है। शुक्ल यजुर्वेद का अपर नाम वाजसनेयी-संहिता, अतः इस उपनिषद् का भी नाम वाजसनेय- संहितोपनिषद् है। केवल संहितोपनिषद्, मन्त्रोपनिषद् भी कुछ लोग कहते हैं।

### 5.4.2 रीति और अध्याय आदि

यह उपनिषद् पद्यात्मक है। एक ही अध्याय है। और अट्ठारह मन्त्र हैं।

### 5.4.3 विषय

इस उपनिषद् में ईश का निर्मातृत्व आदि गुण कहा गया है। आत्मा का स्वयं प्रकाशन ही यहाँ विषय को ग्रहण किये हुए है। यहाँ कहते हैं- हे मनुष्य! यह सब अनित्य है, उस सत् ईश्वर के द्वारा व्याप्त है। अनित्यों के त्याग से ही आत्मा प्राप्त होती है। किसी के धन की आकांक्षा होती है। अर्थात् धन की आकांक्षा मत करो। सब उस ईश्वर का ही है, उसके कारण है, उसकी ही इच्छा करो, उसके द्वारा ही सब व्याप्त है तथा फल प्राप्त होता है, ऐसा आशय है। यहाँ निवृत्ति-मार्ग गामियों के लिए उपदेश है। निवृत्ति सन्यास तथा समस्त कर्मो से उपरति है। उसके कारण मन्त्र है-

**ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥ (ईश. 1)**

जो सौ वर्ष जीने की इच्छा करते है।, उनके द्वारा कर्म करना ही चाहिए। कर्म नहीं करने वाला निश्चय ही कर्मलेपहीन होता है। वेदान्त में ही पाप-पुण्य वर्जनीय है। दोनों ही संचारचक्र और पतन का कारण होने से छर्दि के समान हेय है। उससे यदि तुम प्रवृत्ति भाग में संसार को भेदन करने की इच्छा रखते हो तो ईश्वर के शरण को छोड़कर विषयों से निर्लिप्त रहने का कोई साधन नहीं है। यहाँ साधक प्रवृत्ति मार्गी संसारी गृहस्थ है।

वे जो अपने अजानन् शरीर को त्यागते है, वे सभी असुर्या लोक में जाते हैं। असुर्य,

यह परमात्मा के अभाव के कारण सभी देव आदि के समस्त लोक असुर्य हैं। वे सभी लोक अन्धकार से आवृत हैं। इसीलिए-

**असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।**
**तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चाऽऽत्महनो जनाः॥ (ईश. 3)**

अब आत्मदर्शी के विषय में कहते हैं कि जो पुरूष सर्वत्र, अन्दर और बाहर आत्म को देखता है वह किसी को जुगुप्सनीय, निन्दनीय अथवा घृणा के योग्य नहीं मानता। तब सभी भूत उस पुरूष के आत्म रूप ही होता है। ब्रह्म निश्चय ही निरञ्जन (क्लेश रहित), अपापविद्ध, सभी दुःख से रहित, आनन्द स्वरूप है। अतः उस पुरूष के मोह अथवा शोक नहीं होता है। वह सर्वत्र आत्मा को ही देखता है। इसीलिए-

**यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवभूद्विजानतः।**
**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ (ईश. 7)**

वह ब्रह्म स्वप्रकाशकत्व, सर्वव्यापित्व, सर्वज्ञत्व, सर्वनियन्तृत्व आदि गुणों से अन्वित है। प्रजापति आदि के कर्म उसके द्वारा ही विहित है। उसके कारण केवल कर्म में रत रहने वाला अन्धकार में जाता है, और देवता आदि के ज्ञान का अवलम्बन करके जो रहते हैं वे तो और गहन अन्धकार में जाते हैं।

उसी प्रकार एक अन्य मन्त्र है। जिसमें कहते हैं सत्य स्वरूप आदित्य मण्डलस्थ ब्रह्म (पुरूष) स्वर्णिम ज्योतिर्मय पात्र से आवृत (ढका) है। अब पूषन के समक्ष प्रार्थना है की है पूषन् (सूर्य)! उस पात्र को हटा दें जिससे मुझे ब्रह्म की उपलब्धि हो। इसीलिए -

**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।**
**तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥ (ईश. 15)**

## 5.5 केनोपनिषत्

सामवेद की जैमिनीय शाखा, तलवकार ब्राह्मण पर प्राप्त उपनिषद् यह 'केन' नाम वाला है।

### 5.5.1 नामकरण

तवलकार ब्राह्मण में इसके अन्तर्भाव के कारण तवलकार उपनिषद् भी अभिधा है। इसमें 'केन केन' आरम्भ में बहुत बार पाठ होने से इस उपनिषद् को 'केन' कहा गया।

टिप्पणी

## 5.5.2 रीति और अध्याय

यह गद्यपद्यात्मक है। इसमें 'खण्ड' नामक अध्याय है। उसके द्वारा यहाँ चार खण्ड प्रस्तुत हैं। उसमें प्रथम और द्वितीय खण्ड पद्यात्मक है। तथा तृतीय और चतुर्थ खण्ड गद्यात्मक है।

## 5.5.3 विषय

यहाँ प्रथम-द्वितीय खण्डों में गुरू-शिष्य के संवाद के माध्यम से आत्मा का उपदेश दिया गया है। शिष्य उस समय तक अपने प्रश्नों को गुरू के समीप स्थापित करता है की किससे हमारे द्वारा सभी कार्य किया जाता है, किसके द्वारा हम इस संसार में आए, ये इन्द्रियाँ किसके द्वारा अपने कर्मों में संलग्न रहती हैं। गुरू तो सत्यनिष्ठ शिष्य के अज्ञान को दूर करता है कि वह श्रोत्र का श्रोत्र, मन का भी मन, सभी इन्द्रियों का वह ही इन्द्र है। जो उसे जानता है, वह अमृतत्व को प्राप्त करता है। इसीलिए-

**श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मन यद्**
**वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।**
**चक्षुषश्चचक्षुरतिमुच्य धीराः**
**प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ (केन 1/2)**

शिष्य का पुनः प्रश्न होता है की इन्द्रिय का अविषय है वह ज्ञानविषयी कैसे होगा? अब गुरू कहते हैं कि वह ब्रह्म निश्चित रूप से ज्ञान-अज्ञान के विषय से भिन्न है। वाणी, मन, चक्षु, अथवा सभी इन्द्रियों द्वारा जो विषयी नहीं होता है, वही वह ब्रह्म है। तो 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इस श्रुति में प्रकाश शील का ही प्रकाश में हेतुत्व कैसे होता है? स्वयं को कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकता, ऐसे वक्तव्य में सूर्य के आत्म प्रकाश में प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। यहाँ गुरू द्वारा शिष्य को आत्मतत्व का ज्ञान दिया जाता है। जीव-ब्रह्म के ऐक्य में ही वेदान्त का तात्पर्य है।

अब शिष्य के ज्ञान के परिपाक के लिए गुरू वाद करते हैं कि यदि तुम्हारे द्वारा माना जाता है कि वह ब्रह्म तुम्हारे द्वारा ज्ञात है तो वह तुम्हारा भ्रम है, तुम्हारे द्वारा अल्प ही ज्ञात है। अतः अभी ब्रह्म तुम्हारे द्वारा विचारणीय है।

और क्या कहते हैं कि यदि आत्मज्ञान इस जन्म में होता है तब महान लाभ है। नहीं तो पतन निश्चित है। इसीलिए आत्मज्ञान के अभाव में जीव पुनः-पुनः संसार में अवतरित होता है, जरा (बुढ़ापा), व्याधि (रोग), भय आदि दुःख सहता है, आनन्द-प्राप्ति को छोड़कर शोक युक्त नहीं हो सकता है। उसके लिए गुरू मुख से श्रुति का उपदेश है-

**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति**
**न चेदिहावेदन्महती विनष्टिः।**

**भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः**
**प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ (केन 2/5)**

यहाँ तृतीय और चतुर्थ अध्याय में आख्यान मुख द्वारा श्रुति का उपदेश दिया जाता है। एवं आख्यान है- कभी देव और असुर संग्राम हुआ। देवता विजयी हुए। वस्तुतः सर्वकारणात्मक ब्रह्म के हेतुत्व से ही उनकी विजय हुई तथापि वे मोहान्वित थे इसीलिए हम विजयी हुए, ऐसा मानते हैं। तब निराकार आत्मा भी देवताओं के ज्ञान-प्रविधि के लिए साकार हुआ।

पूज्य यक्ष रूप को धारण किए ब्रह्म को देखकर देवताओं ने अग्नि को कहा- हे जातवेद! क्या सम्यक् रूप से इस यक्ष को जाने? अब वैसा हो, यह कहकर अग्नि गया। अग्नि को देखकर उस यक्ष ने कहा 'कौन है?' अग्नि ने भी स्वयं का परिचय दिया। ब्रह्म ने 'तुम्हारा क्या सामर्थ्य है', ऐसा कहा। अग्नि ने, संसार में सब कुछ जला सकता हूँ, ऐसा कहा। तब ब्रह्म ने एक तृण स्वीकार करके 'यह जलाओ', ऐसा कहा। वह अग्नि सभी शक्ति के द्वारा भी तृण को नहीं जला सका। उसने देवताओं को आकर कहा कि यज्ञ को नहीं जान सका।

अब वायु को भेजा गया। वायु भी यक्ष द्वारा उसी प्रकार से पूछा गया। और उसने कहा कि पृथिवी पर मैं सब कुछ ग्रहण कर सकता हूँ। पूर्ववत् इस तृण को ग्रहण कर दो। किन्तु वह भी असमर्थ हुआ। और निराश होकर आया। तब इन्द्र को भेजा गया। इन्द्र के जाने पर तो (यज्ञ) अचानक तिरोहित हो गया। अब उसे जानने के लिए ध्यानमग्न इन्द्र ने आकाश में स्त्री रूप को देखा। उसने निश्चित ही उमा रूद्रपत्नी हेमवती एवं ब्रह्म को धारण किया। वह उमा ही ब्रह्म-विद्या है। अब इन्द्र ने उससे पूछा, उसके ही वचन से उसने (इन्द्र ने) ब्रह्म को जाना। यहाँ आशय है कि गुरू के समीप बैठे बिना ज्ञान का उन्मेष नहीं होता है।

## 5.6 कठोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा पर प्राप्त होता है।

### 5.6.1 नामकरण

कठ शाखा में पढ़ने से इसका नाम कठ है। सम्प्रदाय में काठकोपनिषद् भी कहते है।

### 5.6.2 रीति और अध्याय

यह पद्यात्मिका है। इसमें दो अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में तीन वल्ली है।

टिप्पणी

## 5.6.3 विषय

कठोपनिषद् में आख्यायिकामुख द्वारा ब्रह्मविद्या उपदिष्ट है। आख्यायिका का विषय ही ब्रह्मविद्या स्तुति है। 'आख्यायिका ब्रह्मविद्यास्तुत्यर्था' यह श्लोक भगवत्पाद ने कठोपनिषद् के भाष्य में कहा।

कभी वाजश्रवस् ने विश्वजित नामक यज्ञ किया। इस यज्ञ में सभी (वस्तुएँ) दक्षिणा रूप में देने योग्य होती हैं। उनका पुत्र नचिकेता था। और वह कुमार था। वाजश्रवा द्वारा जीर्ण (वृद्ध) गायें दक्षिणा रूप में दी जा रही हैं, ऐसा देखकर नचिकेता ने विचार किया कि अधम दक्षिणा के दान द्वारा पिता से पाप होगा। और उससे उसमें (पिता में) श्रद्धा व्याप्त है। अब उस श्रद्धावान् ने पिता को कहा 'पिता! मुझे किसको देंगे?', बालक का वचन है, ऐसा मानकर जब वाजश्रवा ने कर्ण नहीं दिया (अर्थात् अनसुना कर दिया) तब नचिकेता ने बार-बार अपने वाक्य का आवर्तन किया। अब क्रोधित होकर उन्होंने कहा कि 'तुम्हें मृत्यु को देता हूँ।' तभी सहसा 'मेरे द्वारा यह क्या कहा गया', वाजश्रवस खिन्न मन से संवृत हुआ। किन्तु श्रद्धावान् नचिकेता ने चिन्तन किया कि मैं तो शिष्य परिषद् में अनेक उत्तम अथवा मध्यम छात्रों में नहीं हूँ, मैं अधम हूँ। उसके कारण मुझे ही दक्षिणा के रूप में देते हैं, उसमें विशेष क्या है।

अत: उसने कहा कि पिता आप सत्य का पान करें, चिन्ता न करें। उस प्रकार नचिकेता यम के गृह गया।

यम-गृह में तब यम नहीं था। और वहाँ वह तीन रात तक आवास के बाहर बैठा। अब घर में यम के आने पर गृहपरिषद् में उसके द्वारा सब ज्ञात हुआ। अतिथि ने प्रतीक्षा किया है और वो भी ब्राह्मण। घर में अप्राप्त आहार से युक्त अतिथि साक्षात् अग्नि के समान होता है और उसके सभी पुण्य आदि को हर लेता है। इसके कारण उनके द्वारा नचिकेता पाद आदि द्वारा पूजा गया। तत्पश्चात् प्रायश्चित करने के लिए उन्होंने कहा- हे नचिकेता यहाँ पर तीन रात्रियों तक बिना खाये आप बैठे रहे, उस प्रकार प्रत्येक रात्रि एक-एक वर की इच्छा करे। अब नचिकेता ने प्रथम वर माँगा- मैं यहाँ आया, पिता निश्चय उत्कण्ठित हैं। उसके कारण उनकी शान्ति जैसे थी वैसे हो, और भी आपके पास से गमन के कारण प्रेत लोक से जाता हूँ, अत: मुझे पूर्व के समान ही जानें, ऐसा करता है। यम ने सन्तुष्ट होकर इप्सित वर दिया।

तत्पश्चात् उसने द्वितीय वर की इच्छा की- स्वर्गलोक में मृत्यु नहीं है। पिपासा आदि दु:ख भी नहीं है। इस कारण हे यम! आप उस स्वर्गलोक की प्राप्ति के साधन अग्नि को कहें। तब यम ने अग्निविद्या की शिक्षा नचिकेता को दी। जिसके द्वारा यह उत्तम शिष्य है, ऐसा जानकर प्रसन्न मृत्यु (यम) ने एक अधिक वर दिया। और उन्होंने विविध रत्नों वाली एक माला नचिकेता को समर्पित करके कहा अब से जो अग्नि उन्हें उपदिष्ट है, वह तुम्हारे नाम से होगी। उसका 'नचिकेतस' यह नाम लोक में माना जाएगा।

अब तृतीय वर माँगता है कि मनुष्य में आत्मा है, इस विषय में कुछ कहते है 'आत्मा' है, और कुछ कहते हैं ''नहीं है''। इस विषय में जो विद्या होती है, उसको मुझे कहें। मृत्यु ने कहा- यह विषय देवताओं द्वारा भी पूछा गया। किन्तु यह सरलता से जानने योग्य नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म (विषय है)। उस कारण हे नचिकेता अन्य वर माँगो। यह आकाङक्ष्य नहीं है।

नचिकेता ने श्रद्धापूर्वक उस ही प्रश्न को पुनः पूछा है। महत का लाभ सरलता से नहीं होता है। इन्द्रिय के परिपूरक बुरे विषय इसमें विद्यामान होते हैं। किन्तु ब्रह्मविद्या विवेक, वैराग्य आदि से हीन अधिकारी में प्रतिष्ठित नहीं होनी चाहिए। उस कारण से यम भूमि, धन, नारी, पुत्र, पौत्र, शत वर्षीय जीवन आदि प्रलोभन नचिकेता के समक्ष रखकर विचार करते है। किन्तु नचिकता फिर भी अपने वचन पर ही प्रतिष्ठित रहा। वह निश्चय ही उन अनित्यों का धर्म जानता है। उसी कारण से ही –

**श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्**
**सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।**
**अपि सर्वं जीवितमल्पमेव**
**तवैव वाहास्तव नृत्यीते॥ (कठ 1/1/26)**

एवम् कसौटी के पत्थर द्वारा जिस प्रकार स्वर्ण का यथार्थ परिज्ञात होता है उसी प्रकार नचिकेता की भी विद्याधारण करने की पटुता को जानकर मृत्यु (यम) ने उसे ब्रह्मविद्या बताई।

इस उपनिषद् में बहुत से ब्रह्मतत्व प्रतिष्पाठक मन्त्र हैं। तभी ज्ञान के लिए क्रमशः उदाहरण दिये गए है- उसमें रथ रूपक कल्पनात्मक मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है। इसी प्रकार जीवात्मा ही रथी अर्थात् रथस्वामी है, शरीर तो रथ है, बुद्धि सारथि है, मन लगाम अथवा प्रग्रह है, उसमें इन्द्रियाँ अश्व हैं तथा इन्द्रिय के विषय गमन का मार्ग है, ऐसी कल्पना की गई है। उसके द्वारा शरीर, इन्द्रिय, मन के साथ आत्मा ही मनीषियों द्वारा संसारी कही जाती है। उसके द्वारा केवल आत्मा का भोक्तृत्व निराकृत है। आमत्व-प्राप्ति कैसे हो तो रथी यदि सत्पुरूष हो तो सम्भव है नहीं तो दुष्ट रथी द्वारा आत्मा की प्राप्ति कपोल कल्पित ही है। उसमें ही मन्त्र हैं-

**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।**
**बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रमेव च॥**
**इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।**
**आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥**
**यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।**
**तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥**

**यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।**
**तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥ (कठ 1/3/36)**

टिप्पणी

## 5.7 प्रश्नोपनिषद्

अथर्ववेद की पैप्पालाद शाखा पर यह उपनिषद् प्राप्त होता है।

### 5.7.1 नामकरण

इसमें गुरू के समीप प्रश्न को समक्ष रख ब्रह्मविद्या विहित है। अध्यायों का नाम भी प्रश्न है, उससे ही यह प्रश्नोपनिषद् है।

### 5.7.2 रीति और अध्याय

यह गद्यात्मक है। तथापि यहाँ बहुलता से गद्य होते हैं, मध्य-मध्य में कुछ पद्य है। यहाँ छः संख्यक प्रश्न नाम अध्या हैं।

### 5.7.3 विषय

कभी भारद्वाज पुत्र सुकेशा, शिबिपुत्र सत्यकाम, गर्ग गोत्रीय सौर्य्यायणी, अश्वल पुत्र कौसल्य, भृगुवंशीय वैदर्भि और कत्य पुत्र कबन्धी जो ब्रह्मजिज्ञासु और समित्पाणि (समिति से युक्त हाथ वाले) थे, महर्षि पिप्पलाद के पास गए। उनको देखकर एक वर्ष में ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और तप से स्थिति होने के लिए उपदेश दिया। वहाँ से गत वर्ष में वे पुनः आए।

कबन्धी ने कहा- हे भगवान्, ये प्रजाएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं? तब पिप्पलाद ने प्रजापति के सर्जन को कहा। तथा सृष्टि आदि विषय को बताकर चन्द्र आदि लोक के गमन के सामर्थ्य को कहा।

अब वैदर्भि ने पूछा- भगवान् कौन से देवता प्रजा के शरीरों को धारण करते हैं, और कौन वरिष्ठ है? तब पिप्पलाद ने आकाश आदि में देवत्व के आरोप द्वारा उन्हें उपदेश दिया। वहाँ पर उपदेश के क्रम से प्राण वरिष्ठ है, ऐसा आया। इसीलिए सभी प्राण पर आश्रित हैं। वहाँ प्रदर्शित है कि यथा चक्र के बीच में अराएँ चक्र धारण श्लाका के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं।

तब बुद्धिमान कौसल्य ने विचार करके प्राण का अनित्यत्व पूछा- भगवन् प्राण कहाँ से उत्पन्न होते है? तथा उनके द्वारा प्राण के कार्य आदि की भी जिज्ञासा हुई। तब पिप्पलाद सन्तुष्ट होकर आत्मा से प्राण का जन्म है, इत्यादि विषय को उपदिष्ट किया। उनके द्वारा पाँच प्रकार के प्राणों का वर्णन भी किया गया। तथा मुख्य प्राण एक ही है तथा कार्यभेद से पाँच है। वे हैं- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। प्राण सामने के मुख से गमन करने वाला नासिकाग्रवर्ती है। अपान आवागमन करने वाला पायु आदि

टिप्पणी



स्थानवर्ती है। व्यान सर्वत्र गमन करने वाला सम्पूर्ण शरीरवर्ती है। उदान कण्ठ स्थानीय ऊर्ध्वगमन करने वाला उत्क्रमण वायु है। और समान शरीर के मध्य में आशित, पीत, अन्न आदि को सन्तुलित करने वाली वायु है। इस प्रकार अनित्य संसार की आलोचना हुई। अब सौर्य्यायणी प्रश्न से परविद्या के साधन आदि को कहते है। तत्पश्चात् सत्यकाम द्वारा प्रणव (ओंकार) के साधन को पूछा गया। पिप्पलाद द्वारा पर-अपर ब्रह्म के प्रणवत्व का प्रतिस्थापन प्रस्तुत करके प्रणव की व्याख्या की गई। एवम् अन्त में सुकेशा ने कहा कि कौसलदेशीय राजकुमार द्वारा वह पूछा गया था कि वह षोडशकल पुरूष को जानता है अथवा नहीं। तब न जानने पर उसे राजपुत्र द्वारा भेजा गया। अब भगवन् पुरूष इनमें कौन है, यह प्रश्न है।

अब पिप्पलाद पुरूष को बताते हैं। पुर अर्थात् शरीर में जो शयन करता है, वह पुरूष है। उस कारण से पुरूष इस देहाकाश में ही विराजता है। वह ही आत्मा है। वहाँ प्राणी आदि का पुरूष में ही लय होता है। वे नाम रूप में ही स्पष्ट होते हैं, पुरूष ही विराजता है। जो पुरूष को जानता है वह मृत्यु को पार कर लेता है। ''तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्येऽयनाय'' (श्वेताश्वतर 3/8) इत्यादि श्रुति में है। इसी कारण विहित है-

**अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन प्रतिष्ठिताः।**
**तं वेद्यं पुरूषं वेद यथा मा वो मृत्यु परिण्यथा इति॥ (प्रश्न. 6/6)**

इस उपनिषद् में आदि में आत्म भिन्न पदार्थ को बताकर और उनके अपवाद रूप में आत्मतत्व को प्रतिष्ठापित करता है।

## 5.8 मुण्डकोपनिषद्

यह अथर्ववेदीय उपनिषद् है।

### 5.8.1 नामकरण

'मुण्डक' अभिधा के द्वारा अध्याय के विभक्त होने के कारण इसका यह नाम हुआ।

### 5.8.2 रीति और अध्याय आदि

यह पद्यात्मक उपनिषद् है। मुण्डक नाम से तीन अध्याय विराजमान हैं। प्रत्येक मुण्डक में दो खण्ड हैं।

### 5.8.3 विषय

यहाँ ब्रह्मविद्या की परम्परा निर्देशित है। इसलिए ब्रह्मा ने आदि में अथर्वण को विद्या

टिप्पणी

का उपदेश दिया। अथर्व ने अङ्गिरा को, अङ्गिरा ने भारद्वाज सत्यवह को और सत्यवह ने अङ्गिरस को उपदेश दिया। इसमें परा-अपरा विद्या का संकलन होता है। इसलिए-

तत्रपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।। (मुण्डक 1/1/5)

इस उपनिषद में बहुत से विषय काल से विचार पथ पर मनीषियों के होते हैं। बहुश्रुत मन्त्र भी यहाँ प्राप्त होते हैं। यथा-सत्यमेव जयते। उसका सम्पूर्ण शरीर वैसे-

**सत्यमेव जयते नानृतं**
**सत्येन पन्था विततो देवयानः।**
**येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा**
**यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।। (मुण्डक 3/1/6)**

इसके तृतीय मुण्डक प्रथम खण्ड में एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षी वर्णित है। उनमें से एक स्वादिष्ट फल को खाता है, और अन्य केवल द्रष्टा के रूप में बैठता है। प्रथम जीवात्मा है, अपर परमात्मा है। वह कर्म करते हुए पाप पुण्य से आवृत होकर संसार में गिरता है। अन्य (अपर) अन्न और निर्विकार है। किन्तु जब संसार की अग्नि में संतप्त होकर वह स्वयं आत्मा में निरतिशय आनन्द प्राप्ति के हेतु का नियोजन करता है, तभी वीत शोक होता है। और भी, रूपक उपस्थापित है कि प्रणव ही धनु है, शर अथवा बाण जीवात्मा है, लक्ष्य तो परमात्मा परमब्रह्म है, प्रमाहीन संयतपुरूष ही उसके भेदन में समर्थ है। वहाँ पर शर यथा लक्ष्य पर तन्मयता से जाता है वैसे ही जीवात्मा भी परमात्मा में होता है। इसीलिए-

**प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।**
**अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।। (मुण्डक 2/2/4)**

## 5.9 माण्डूक्योपनिषद्

यह अथर्ववेदीय उपनिषद् है।

### 5.9.1 नामकरण

विशेष नहीं है।

### 5.9.2 रीति और अध्याय आदि

यह गद्यात्मक उपनिषद् है। इसमें बारह कण्डिक हैं।

### 5.9.3 विषय

इसमें जीव की तीन अवस्था कही गई हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये अवस्थाएँ तीन हैं। अवस्थाओं में भिन्न शरीर होते हैं। जो नष्ट होता है, वह शरीर है। इसीलिए जाग्रत में स्थूल, स्वप्न में सूक्ष्म, सुषुप्ति में कारण। स्थूल शरीर भी व्यष्टि- समष्टि के भेद से दो प्रकार का होता है। व्यष्टि स्थूल शरीर अभिमानी जीव विश्व है। समष्टि स्थूल अभिमानी जीव वैश्वानर है। व्यष्टि सूक्ष्म शरीर अभिमानी जीव तैजस है। समष्टि सूक्ष्म शरीर अभिमानी जीव हिरण्यगर्भ है। व्यष्टि कारण शरीर अभिमानी जीव ईश्वर है। इनकी वेदान्त के प्रौढ़ ग्रन्थों में बहुलता से आलोचनाएँ यहाँ-वहाँ दिखती है। विद्यारण्य मुनि द्वारा रचित पञ्चदशी में इस विषय पर महान आलोचना है। यह उपनिषद् ही उस विषय की सूची है। यद्यपि यह लघुकाय है तथापि विषय के गाम्भीर्य को गौडपादाचार्य कृत माण्डक्यकारिका और उसके शंकरभगवत्पाद द्वारा कृत भाष्य स्पष्ट रूप से प्रकाशित करते हैं। इन तीन अवस्थाओं के वर्णन के पश्चात् सभी के समक्ष तुरीय ब्रह्म प्रतिपादित है। इसीलिए-

**नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।**

**अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्य-लक्षणमचिन्त्यमण्यप-देश्यमेकात्मप्रत्ययसारं**
**प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते। स आत्मा। स विज्ञेयः॥**
**(माण्डूक्य 7)**

प्रत्येक वेद में एक महावाक्य स्वीकृत है। वही महावाक्य होता है जहाँ जीव-ब्रह्म के ऐक्य को सुस्पष्ट प्रकाशित किया जाता है। इस अथर्ववेदीय उपनिषद् में अथर्ववेदीय महावाक्य है - अयमात्मा ब्रह्म (माण्डूक्य 2)। उसके द्वारा उपनिषदों में इसका स्थान अवश्य ही अन्यतम माना जाता है।

## 5.10 तैत्तिरीयोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयशाखा के तैत्तिरीय आरण्यक पर यह उपनिषद् प्राप्त होता है।

### 5.10.1 नामकरण

तैत्तिरीय आरण्यक के अंशत्व के कारण इसका नाम तैत्तिरीय है।

### 5.10.2 रीति और अध्याय आदि

इस गद्यात्मक उपनिषद् में कुछ श्लोक प्राप्त होते हैं। इसमें अध्याय वल्ली कहे जाते है। तथा यहाँ तीन वल्लियाँ हैं। यथाक्रम नाम हैं- शीक्षावल्ली, ब्रह्मानन्द वल्ली और

भृगुवल्ली। वल्ली भी अनुवाक् द्वारा विभक्त है। उसमें शिक्षा में बारह, ब्रह्मानन्द में नौ और भृगु में दस अनुवाक् हैं।

## 5.10.3 विषय

इसके आदि में वर्णों के उच्चारण के विषय में विहित है। शिक्षा ग्रहण कैसे हो, ब्रह्मचर्य आदि का पालनपूर्वक इसमें निबद्ध है। सदा सदाचार, आचरण, निकटता की शिक्षा देता है। अध्ययन समापन के अन्त में समावर्तनकाल में आचार्य का शिष्यों को उपदेश निरन्तर वैदिक निष्ठा के धारक रूप में विराजमान है। इसीलिए - वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति-सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यमा भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। (तैत्तिरीय 1/11/1)

माता, पिता आदि का देव-बुद्धि द्वारा पूजन इत्यादि सदाचार का शिक्षण इसमें उपनिहित है। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथि देवो भव। (तैत्तिरीय 1/11/2) इत्यादि मन्त्र इसमें ही है। इसके द्वितीय वल्ली में ही 'सह नाववतु' (तैत्तिरीय 2/1/1) और 'शन्नो मित्रः' (तैत्तिरीय 2/1/2) शान्तिमन्त्र प्राप्त होते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप का भी जो श्रुतिप्रमाण उस उपनिषद् में है और जो बहुद्धृत भी है - सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तैत्तिरीय 2/1/3)। इसमें पञ्चभूतों के भी सृष्टि तत्व को उपनिहित किया गया है। जिसके द्वारा आकाश आदि क्रम से सृष्टि जानी जाती है। सृष्टि ब्रह्म की ही है। इसीलिए-

> **तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत।**
> **आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भम्यः। पृथिवी। पृथिव्या**
> **औषधयः। इत्यादि। (तैत्तिरीय 2/1/3)**

इसमें ही ब्रह्म के स्वरूप के विषय में विश्रुत श्रुति पद होते हैं। यतो वाचो निवर्तन्ते (तैत्तिरीय 2/4) इत्यादि वहाँ उदाहरण है।

अब भृगु वल्ली में वेदान्त में प्रसिद्ध कोशों का वर्णन है। यद्यपि श्रुति में कोश शब्द का प्रयोग नहीं है तथापि उनके कोशवत् आच्छादकत्व के कारण सम्प्रदाय में कोशत्व ही माना गया। पाँच कोश हैं - अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। इनके विषय में सदानन्दयोगीन्द्र विरचित वेदान्तसार में सुष्ठु प्रकार से निगदित है। पञ्चदशी में भी इस विषय में विस्तारपूर्वक आलोचना विहित है।

## 5.11 ऐतरेयोपनिषद्

ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मणस्थ ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय आरण्यक में यह उपनिषद् है।

## 5.11.1 नामकरण

ऐतरेय आरण्यक के अंश होने के कारण इसका नाम ऐतरेय है।

## 5.11.2 रीति और अध्याय आदि

यह उपनिषद् गद्यात्मक है। और तीन अध्याय है। प्रथम अध्याय में तीन खण्ड है। शेष दो अध्याय एक खण्डात्मक है।

## 5.11.3 विषय

इसमें ही ऋग्वेद के अन्तर्गत महावाक्य है जो सम्प्रदाय में स्वीकृत है, वह है - प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐतरेय 3/1/3) अपर विद्या (ज्ञान) के अनन्तर तो कर्म के असत्व होने के कारण पराविद्या में प्रवेश होता है। अब यहाँ परगति विषय श्रुति द्वारा उपदिष्ट है। उसमें वामदेव ऋषि सुने जाते है जिन्होंने माता के गर्भ में ही आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके जन्म को प्राप्त किया।

### पाठगत प्रश्न-2

1. ईशोपनिषद् वाजसनेय संहिता में कहाँ है?
2. कौन सा लोक ईशोपनिषद् में वर्णित है, ऐसा प्राप्त होता है?
3. ईशोपनिषद् में कितने मन्त्र उपलब्ध होते हैं?
4. कौन सा याग (यज्ञ) वाजश्रवा द्वारा किया गया?
5. कितने रात नचिकेता द्वारा यमगृह में बिताए गए?
6. रथ रूपक इसमें प्राप्त होता है-

   (क) मुण्डक में (ख) काठक में (ग) तैत्तिरीय में
7. किस ऋषि द्वारा प्रश्नोपनिषद् में कौसल्य आदि उपदिष्ट हैं?
8. 'अतिथिदेवो भव:' यह मन्त्र कहाँ प्राप्त होता है?
9. पञ्चकोश क्या हैं?
10. ईशोपनिषद् किस प्रकार का उपनिषद् है, मन्त्रोपनिषद् अथवा आरण्यकोपनिषद्?
11. शंकराचार्य द्वारा किस शाखा के ईशोपनिषद् के मन्त्रों का भाष्य विरचित है?

12. अथर्ववेदीय महावाक्य क्या है?

13. सत्यमेव जयते प्राप्त है –

(क) तैत्तिरीय में (ख) ईश में (ग) इसमें कहीं नहीं।

14. कठोपनिषद् की आख्यायिका को संक्षेप में बताइए।

15 स्तम्भों का मिलान करो–

| 'क' स्तम्भ | 'ख' स्तम्भ |
|---|---|
| तैत्तिरीय | हिरण्यमयेन पात्रेण |
| नचिकेता | सह नाववतु |
| ईशोपनिषद् | माण्डूक्योपनिषद् |
| अवस्थात्रय | प्रज्ञानं ब्रह्म |
| ऋग्वेद | वाजश्रवस |

## 5.12 छान्दोग्योपनिषद्

सामवेदीय छान्दोग्यब्राह्मण में यह उपनिषद् है

### 5.12.1 नामकरण

छान्दोग्य ब्राह्मण के अन्तर्गत होने से इसका यह नाम है।

### 5.12.2 रीति और अध्याय आदि

यह गद्यात्मक है। इसमें आठ अध्याय हैं। और अध्याय खण्डों में विभक्त हैं।

### 5.12.3 विषय

इसमें सामवेद गत महावाक्य सम्प्रदाय स्वीकृत 'तत्त्वमसि' है। इस 'तत्वमसि' महावाक्य का वेदान्त में महान विचार है। प्राय: सभी वेदान्त विषयक ग्रन्थ में इसका विषय के रूप में ग्रहण है। पञ्चदशी में यद्यपि महावाक्य विषयक अध्याय पृथक है, तथापि तत्वमसि महावाक्य का विचार प्रथम अध्याय में भी उपनिहित है। वेदान्तसार ग्रन्थ में भी इसका प्रवर्तन दिखता है। वहाँ इसके छठे अध्याय अथवा प्रपाठक में उद्दालक, जिनका अपर नाम धेय आरूणि है, अपने पुत्र श्वेतकेतु को उसके आत्म ज्ञान के उन्मेष के लिए

कहते हैं- ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति। इस वाक्य के लक्षणा आदि के विचारपूर्वक वेदान्त के उन उन ग्रन्थों में प्रकरण हैं।

छान्दोग्य का अपर बहुचर्चित विषय उपासना है। 'उपासनानि सगुणब्रह्मविषयकमानसव्यापाररूपाठि। शण्डिल्यविद्यादीनि'- यह वेदान्त सार में सदानन्दयोगीन्द्र द्वारा उपासना लक्षित है। और वे कौन-सी शाण्डिल्य विद्या आदि छान्दोग्य में प्राप्त होती हैं। इसके तृतीय अध्याय के चौदहवें खण्ड में ही 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि रूप से शाण्डिल्य विद्या कहलाती है। इस उपनिषद् का प्रारम्भ ही ओपारोपासना से होता है। एवं उसमें बहुत उपाासना के प्रकरण हैं। उसमें कुछ अक्षिपुरूषोपासना, सूर्योपासना, द्वारपालोपासना, प्राणोपासना इत्यादि हैं।

और इस उपनिषद् में भी अनेक आख्यायिकाएँ प्राप्त होती हैं। उनमें जाबाल सत्यकाम की आख्यायिका सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उसको छोड़कर प्रवाहणजैवल्य आख्यायिका, जानश्रुतिरैक्क्व आख्यायिका है। संवाद के पुर:सर भी ब्रह्मविद्या यहाँ प्रकाशित है। उसमें नारद सनत्कुमार संवाद आदि प्रसिद्ध है।

## 5.13 बृहदारण्यकोपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद के काण्वशाखा तथा माध्यन्दिनशाखा पर शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम आरण्यक के अन्तिम भाग में यह उपनिषद् है। शाखा के भेद से कुछ पाठभेद होता है।

### 5.13.1 नामकरण

बृहद्, यह इसका नाम सार्थकता को भजता है। इससे इसका उपनिषदों में बृहत्व ज्ञात होता है। उपनिषदों में बृहत्व के कारण तथा आरण्य का अंश होने से इसका नाम 'बृहदारण्यक' है।

### 5.13.2 रीति और अध्याय आदि

यह प्राय: गद्यात्मक है, मध्य में कुछ पद्यात्मक श्लोक होते हैं। इसके तीन काण्ड हैं। ये हैं - मधुकाण्ड, याज्ञवल्क्यकाण्ड तथा खिलकाण्ड। प्रत्येक काण्ड में दो अध्याय हैं। इस प्रकार यह उपनिषद् छ: अध्यायों से युक्त है। और अध्याय ब्राह्मण द्वारा विभक्त हैं।

### 5.13.3 विषय

इस उपनिषद में प्रथम अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में यजुर्वेदीय महावाक्य अहं ब्रह्मास्मि उपलब्ध होता है। कर्मानुष्ठानकारी (कर्म अनुष्ठान करने वाला) पुरूष सहसा निर्गुण विषयक

टिप्पणी

ज्ञान का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। उसके कारण आदि में यहाँ सगुणविषयक उपासना विहित है। यहाँ आशय है कि उपासना के द्वारा अध्यारोप के बल से तत्व को समझना। अध्यारोप वस्तु पर अवस्तु के आरोप का नाम है। अपवाद नाम आरोपित के निराकरण का है। यथा प्रसिद्ध उदाहरण है- अंधकार आदि के कारण पुरूष रज्जू में सर्प को आरोपित करता है। किन्तु सम्यक् प्रकाश आदि से भ्रम के दूर होने पर सर्पत्व के आरोप का अपवादपूर्वक वह जानता है कि यह रज्जू है। उसी प्रकार ब्रह्म में यह जगत् अध्यस्त है। अज्ञान के निराकरण द्वारा जगत के बाधित होने पर ब्रह्म की उपलब्धि होती है। उसी अध्यारोप को अवलम्बित कर प्रपञ्च की उत्पत्ति, विस्तार, उत्कर्षरूप हिरण्यगर्भ प्रदर्शित है। ये सभी अनित्य हैं। नेति नेति (बृहद्. 2/3/6) इस विचार से असंसारी असन्न आत्मा का उनसे पृथक्करणं उद्धृत है। प्रथम अध्याय के पञ्चम् ब्राह्मण के सप्त अन्न प्रकरण में जगत का सापेक्षत्व, सातिशयत्व उद्धृत (निदेर्शित) है। वहाँ तो आत्मा के निरतिशयत्व आदि रूप का बोधन के लिए विहित है। यही षष्ठ ब्राह्मण में प्रपञ्च के नामरूपात्मक अनात्मत्व विहित है। और कहते है-

**अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम।**
**आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥**

उससे सत्ता प्रकाशकत्व और आनन्दात्मक ब्रह्मरूप है। उसके कारण सच्चिदानन्द है। संसार में किसी भी नामरूपात्मक की नित्यता नहीं है। इसी कारण से अध्यारोप-अपवाद से अनित्यों में वैराग्य को छोड़कर मुमुक्षु आत्मा की ही उपाासना करता है (आत्मेत्येवापासीत् (बृहद. 1/4/7) इसमें ही बहु प्रसिद्ध जनक याज्ञवल्क्य संवाद और याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद है। और याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद विख्यात है। मैत्रेयी को उनके पति याज्ञवल्क्य का उपदेश चरमतत्व को व्यक्त करता है। जगत् में कुछ प्रिय नहीं होता है। आत्मा ही एक प्रिय है। आत्मा ही सर्वत्र अनूस्यूत (व्याप्त) है। उसके ही प्रिय होने से सब कुछ प्रिय होता है। इसीलिए-

**न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु**
**कामाय सर्वं प्रियं भवति। (बृहद्. 2/4/5)**

**पूर्णमदः पूर्णमिदम (बृहद्. 5/1/1) यह बहुश्रुत शान्ति मन्त्र इसी उपनिषद में प्राप्त होता है।**

**श्वेताश्वतरोपषिद् और कौषीतकी उपनिषद्**

ये दो उपनिषद् दस से भिन्न एक सौ आठ संख्याओं से मुख्य हैं। उसमें श्वेताश्वतर (उपनिषद्) का भाष्य शांकर सम्प्रदाय में है (अर्थात् शंकराचार्य द्वारा रचित नहीं है) कुछ तो शांकर ही हैं।

## 5.14 श्वेताश्वतरोपनिषद्-

श्वेताश्वतर कृष्ण यजुर्वेदीय है। इसमें छः अध्याय हैं। यहाँ ये मन्त्रों में प्रसिद्ध मन्त्र हैं-

**सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।**
**सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥**

**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि**
**त्वं कुमार उत वा कुमारी**
**त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि**
**त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥**
**अजांमेकां लोहितशुक्लकृष्णां**
**बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।**
**अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते**
**जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥**

श्वेताश्वतर में उपनिषद् के अन्दर से अथवा संहिता भाग से अनेक मन्त्र स्वीकृत होते हैं।

## 5.15 कौषीतकि उपनिषद्

यह उपनिषद् ऋग्वेद के कौषीतकि ब्राह्मण के अंश से प्राप्त है। इसमें चार अध्याय हैं। इसमें गर्ग के प्रपौत्र चित्र द्वारा गौतम उद्दालक का संवाद है। उपासना अनुष्ठान के साथ-साथ निर्गुण अवाप्ति भी यहाँ विहित है। और भी चित्र के द्वारा वहाँ ही उक्त है कि किसी साधन द्वारा सभी विचितपर्यंक उपविष्ट प्रजापति ब्रह्म का संवाद हुआ, इस कारण से जो विद्या तब ब्रह्म द्वारा दी गई वह पर्यंक विद्या रूप में ख्यात (प्रसिद्ध) है।

और भी इसमें गार्ग्य ऋषि के साथ काशी-ईश्वर अजातशत्रु का संवाद प्राप्त होता है।

### पाठान्त प्रश्न

1. किस सामवेदीय ब्राह्मण में छान्दोग्य उपनिषद् प्राप्त होता है?
2. बृहदारण्यक नाम का सार्थक्य क्या है?
3. याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद कहाँ है?
4. उपासना क्या है?

टिप्पणी

5. 'महावाक्य' नाम क्या है?
6. सामवेद का महावाक्य क्या है?
7. यह कौषीतकि उपनिषद् में है-

   (क) याज्ञवल्क्य (ख) चित्र (ग) नारद
8. बृहदारण्यक की काण्ड संख्या कितनी है? और नाम बताओ।
9. विद्यारण्य मुनि विरचित ग्रन्थ कौन सा है?
10. पूर्णमदः पूर्णमिदम्' शान्तिमन्त्र किस उपनिषद् में प्राप्त होता है?
11. वेदान्त का क्या विषय है?
12. तैजसः क्या है?
13. कौषीतकि उपनिषद्-भाष्य शंकराचार्य द्वारा कृत है अथवा नहीं?
14. यह मुख्य उपनिषद् नहीं है-

   (क) कैबल्योपनिषद् (ख) तैत्तिरीयोपनिषद् (ग) ईशावास्योपनिषद्
15. बृहदारण्यक का विषय संक्षेप में लिखिए।